सत्यांश

अब इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) में 'इनमें से कोई नहीं' विकल्प भी होगा। जो मतदाता अपने क्षेत्र के किसी भी उम्मीदवार को वोट देना नहीं चाहते, वे 'कोई नहीं' का बटन दबाकर अपना मत दे सकते हैं। 27 सितंबर, 2013 के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुपालन हेतु इसका प्रावधान किया गया है। पहले बहुत से लोग जो दलों-उम्मीदवारों अथवा चुनावी प्रक्रिया से संतुष्ट नहीं होते थे, वे तरह-तरह से मतदान का बहिष्कार करते थे। उनके बहिष्कार का कोई सरकारी रिकार्ड नहीं होता था, क्योंकि उनका विरोध छिटपुट और मतदान-केन्द्र से दूर ही संभव हो पाता था। अब मतदाता मतदान-केन्द्र में जाकर दलों एवं उम्मीदवारों के प्रति अपना असंतोष व्यक्त कर सकते हैं। हालाँकि उनके वोट से चुनाव-परिणाम घोषित होने में सीधी दिक्कत नहीं होगी, लेकिन उनके 'कोई नहीं' के मत-प्रयोग से भविष्य में व्यवस्था के प्रति जनाक्रोश को आँका जा सकेगा। दलों-उम्मीदवारों से असंतुष्ट लोग समय निकालकर घरों से निकलेंगे ताकि अपने मत द्वारा बता सकें कि कोई ठीक नहीं है। यह एक क्रांतिकारी पहल है और जन-प्रतिनिधियों को वापस बुलाने से भी ज्यादा सार्थक है। भविष्य के आंदोलन, व्यवस्था-निर्माण, चुनाव प्रणाली तथा राजनीतिक दलों एवं उम्मीदवारों के लिए ये अच्छे सबक साबित होंगे। 'राइट टू रिजेक्ट' में उतनी ही नहीं, बल्कि ज्यादा ही समस्याएँ होंगी, जितनी 'राइट टू सेलेक्ट' में हैं। 'राइट टू रिजेक्ट' इसी व्यवस्था के दूसरे ध्रुव की उपज होने की वजह से उसकी पोषक भी सिद्ध हो सकती है।

सरकार और राजनीतिक दलों द्वारा यथास्थितिवाद का संरक्षण और बदतर होती जा रही व्यवस्था के प्रति लचीले रुख के समानांतर चुनाव आयोग अपनी सीमाओं के बावजूद चुनाव सुधार लागू करने को तत्पर हुआ है। बहुत अधिक नहीं, परंतु कुछ हद तक चुनावी अव्यवस्था पर अंकुश लगा है, परंतु कई बार चुनाव आयोग भी अपने निष्पक्ष और कर्मठ चुनाव अधिकारियों-कर्मचारियों के हितों की अनदेखी होने देता है, समय रहते उस पर ध्यान नहीं देता। अधिकारी-कर्मचारी चुनाव में निष्पक्ष होने के कारण अपने मूल विभाग की लालफीताशाही, अकर्मण्यता और भ्रष्टाचार के शिकार होते हैं, वे सेवा-सुविधाओं से वंचित किए जाते हैं। चुनाव-ड्यूटी निभाने से आए संकट को झेलने की पूरी जिम्मेवारी चुनाव आयोग की होनी चाहिए, लेकिन उसकी प्राथमिकता 'शांतिपूर्ण' चुनाव संपन्न करा देना भर होता है। चुनाव आयोग का अपना कोई व्यापक-विस्तृत ढाँचा न होना इसका मूल कारण है। उसे केन्द्र या राज्य सरकार के कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसमें तालमेल की कमी दिखती है। पूरा ढाँचा न सही, लेकिन प्रांत, जिला, प्रखंड स्तर तक उसका अपना आंशिक ढाँचा आवश्यक है।

पिछले कुछ बरसों से चुनाव आयोग अपनी स्वायत्त सत्ता के प्रति जागरूक हुआ है और सरकारों से उसकी आवश्यक दूरी बनी है जो प्रशंसनीय है। राजनीतिक दलों के प्रति जनमानस के झुकाव को भाँपकर कुछ नए कदम उठाए गए हैं। इसमें न्यायालय का सार्थक मार्गदर्शन भी प्राप्त हुआ है और इसी का परिणाम है कि मतदाता अब मतदान केन्द्र पर अपने उम्मीदवार और दल चुनने ही नहीं, वरन् अपनी नाराजगी जताने जा सकेंगे। चुनाव आयोग को ऐसे मतों का पूरा रिकार्ड रखना होगा।

चुनावी खर्च की सीमा काफी बढ़ जाने के बावजूद चुनाव आयोग की सख्ती के कारण वैधानिक व्यय का हिसाब-किताब तो रखना ही पड़ता है, साथ ही गुप्त खर्च के लिए कालेधन, चंदे आदि भी नियंत्रित हुए हैं। पोस्टर, बैनर, होर्डिंग आदि के माध्यम से विज्ञापन पर काफी लगाम लगा है, लाउडस्पीकरों एवं जनसभाओं से होने वाला शोर भी कम हुआ है। शहरों में गरीब और पियक्कड़ लोगों के बीच धड़ल्ले से शराब बाँटने की परम्परा कम हुई है। चुनाव आयोग की सक्रियता के कारण मीडिया में जमे राजनीतिक विश्लेषक, पूंजीपति व दल-विशेष के लिए कार्य करने वाले लोग एक्जिट पोल व चुनाव पूर्व सर्वेक्षणों के प्रति सावधान हुए हैं। राजनीतिक हित के लिए काम करने वाला दबाव समूह कमजोर हुआ है, उसकी दूकानदारी फीकी हुई है। चुनाव आयुक्त और उसके कर्मचारी सरकारी होते हैं, लेकिन आयोग में आते ही उन्हें निष्पक्ष कर्मठता व ईमानदारी बरतनी चाहिए। कुछ समय से ऐसा होता दिखा भी है। यह लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत है, परंतु अनेक मामलों में चुनाव आयोग अपने लिए अधिकारों का रोना रोता है जो सही भी है। अतः चुनाव आयोग को अधिक शक्तिसंपन्न बनाकर जवाबदेही तय करना जरूरी है। उसके द्वारा किए जा रहे सुधार 'ऊँट के मुँह में जीरा के फोरन' जैसे ही हैं। चुनाव संबंधी विसंगतियों को दूर करने, राजनीतिक दलों पर प्रभावी नियंत्रण रखने एवं जनसामान्य को जागृत करने का महत्तर दायित्व उस पर है।

चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता, पारदर्शिता और सरलता स्वस्थ लोकतंत्र की नींव है। समय के साथ इस प्रक्रिया में इतनी गुंजाइश भी उत्पन्न होनी चाहिए कि जो कोई भी जनाकांक्षाओं-जनस्वप्न को साकार करने का ज़ज़्बा रखता हो, बेशक वह चुनावी उलझन में नहीं पड़ना चाहता हो, उसे भी जन सेवा में लगाने का उपाय हो। कहीं भी कभी भी चयन या चुनाव प्रत्यक्ष उपलब्ध में से ही होता है, इसलिए यह अधिक क्रांतिकारी नहीं होता। जरूरी नहीं कि जो चीज अच्छी हो, वह सामने भी हो या जो सामने हो, वह अच्छी ही हो।

चुनावी प्रतियोगिताओं में उतरने का माद्दा और कला कुछ लोगों में होती है और वे मैदान में बाजी मार ले जाते हैं, लेकिन अनेक लोग ऐसे भी हो सकते हैं जो चयन प्रतियोगिता एवं चुनावी अखाड़े की कुश्ती को फिजूल का मानते हैं। उन्हें स्वीकार-अस्वीकार, हार-जीत वाला यह पूरा खेल निरर्थक लगता है। ऐसे लोग बहुत अधिक नहीं होते, फिर भी इनकी ताकत अथाह होती है। चुनाव प्रक्रिया में इस बात की संभावना जितनी अधिक होगी कि कोई भी योग्य, सक्षम, कर्मठ व ईमानदार यदि वह खुद न भी चाहता हो और आँखों से ओझल हो, तब भी उसकी जरूरत न दर्शाकर औरों की जरूरत बताकर उसकी रुचि को जनाकांक्षाओं की ओर अग्रसारित किया जाए। तभी सच्चा लोकतंत्र सार्थक होकर निखरेगा।